The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 4 | Issue 4 | April 2026
ISSN: 2583-973X (Online), SJIF IF: 5.6
Website: www.theacademic.in

भारतीय राजनीति में राष्ट्रवाद, समाजवाद और सांप्रदायिकता

राजकुमार दास

शोधार्थी, स्नातकोत्तर गांधी विचार विभाग, ति. मां. भागलपुर विश्वविद्यालय भागलपुर, बिहार-07

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.20213223

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Accepted: 29-04-2026

Published: 10-05-2026

Keywords:

राष्ट्रवाद, समाजवाद , सांप्रदायिकता, भारतीय राजनीति, वैचारिक अंतर्विरोध, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक न्याय, लोकतंत्र, समावेशी राष्ट्रवाद, राजनीतिक विचारधाराएँ ।

ABSTRACT

भारतीय राजनीति में राष्ट्रवाद, समाजवाद और सांप्रदायिकता तीन ऐसे वैचारिक स्तंभ हैं, जिन्होंने आधुनिक भारत के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ढांचे को गहराई से प्रभावित किया है। राष्ट्रवाद जहाँ राष्ट्रीय एकता और पहचान का आधार प्रस्तुत करता है, वहीं समाजवाद सामाजिक-आर्थिक समानता और न्याय की वकालत करता है। इसके विपरीत सांप्रदायिकता, धार्मिक पहचान के आधार पर विभाजन और संघर्ष को जन्म देती है। इन तीनों विचारधाराओं के बीच अंतर्विरोध भारतीय लोकतंत्र की जटिलताओं को उजागर करते हैं। यह शोध आलेख इन वैचारिक प्रवृत्तियों के ऐतिहासिक विकास, सैद्धांतिक आधार और समकालीन राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में उनके अंतर्विरोधों का विश्लेषण करता है। विशेष रूप से यह देखा गया है कि राष्ट्रवाद का उपयोग कभी-कभी राजनीतिक हितों के लिए सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने में किया जाता है, जबकि समाजवाद की मूल भावना सांप्रदायिक विभाजन के विपरीत खड़ी होती है । अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि भारतीय संविधान ने धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय के माध्यम से इन अंतर्विरोधों को संतुलित करने का प्रयास किया है। तथापि, समकालीन राजनीति में इन सिद्धांतों का प्रयोग अक्सर वैचारिक शुद्धता के बजाय व्यावहारिक राजनीति के तहत होता है, जिससे अंतर्विरोध और गहरे होते हैं । अंततः यह आलेख निष्कर्ष निकालता है कि इन वैचारिक अंतर्विरोधों को समझे बिना भारतीय लोकतंत्र की वास्तविक प्रकृति को नहीं समझा जा सकता। इनके संतुलन हेतु समावेशी राष्ट्रवाद और लोकतांत्रिक समाजवाद की पुनर्व्याख्या आवश्यक है।

भूमिका :

भारतीय राजनीति की संरचना बहुआयामी और जटिल है, जिसमें विभिन्न विचारधाराएँ परस्पर क्रिया करते हुए एक गतिशील राजनीतिक संस्कृति का निर्माण करती हैं। राष्ट्रवाद, समाजवाद और सांप्रदायिकता, ये तीनों ऐसी विचारधाराएँ हैं, जिनका भारतीय राजनीतिक विमर्श में विशेष स्थान रहा है। "राष्ट्रवाद का उद्भव औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध एक संगठित प्रतिरोध के रूप में हुआ, जिसने भारत को एक साझा राजनीतिक पहचान प्रदान की ।"[1.](चंद्र, 2016) "वहीं समाजवाद, विशेषकर स्वतंत्रता के बाद, आर्थिक असमानताओं को दूर करने और सामाजिक न्याय स्थापित करने के उद्देश्य से उभरा ।"[2.](दत्त, 2017) इसके विपरीत सांप्रदायिकता एक ऐसी प्रवृत्ति के रूप में विकसित हुई, जो धर्म के आधार पर राजनीतिक लामबंदी को बढ़ावा देती है। यह प्रवृत्ति औपनिवेशिक काल में "फूट डालो और राज करो" की नीति से और अधिक मजबूत हुई । स्वतंत्रता के बाद भी सांप्रदायिकता ने भारतीय राजनीति में समय-समय पर अपना प्रभाव दिखाया है, जो लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए चुनौती बनकर उभरा है। "राष्ट्रवाद और समाजवाद के बीच एक प्रकार की वैचारिक संगति देखी जा सकती है, क्योंकि दोनों ही राष्ट्रीय विकास और सामाजिक कल्याण की बात करते हैं। लेकिन जब राष्ट्रवाद का स्वरूप संकीर्ण हो जाता है, तो यह सांप्रदायिकता के साथ जुड़कर समाजवाद के समावेशी चरित्र को चुनौती देता है ।"[3.](गुप्ता, 2018) समकालीन भारतीय राजनीति में इन तीनों विचारधाराओं का प्रयोग केवल सैद्धांतिक स्तर तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यावहारिक राजनीति में भी गहराई से अंतर्निहित है। चुनावी राजनीति, नीति निर्माण और जनसंचार के माध्यम से इन विचारधाराओं का पुनर्परिभाषण होता रहता है ।

इस संदर्भ में यह अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है कि इन विचारधाराओं के बीच अंतर्विरोधों को समझा जाए और यह देखा जाए कि वे भारतीय लोकतंत्र को किस प्रकार प्रभावित कर रहे हैं। यह आलेख इसी दिशा में एक प्रयास है, जिसमें ऐतिहासिक, सैद्धांतिक और समकालीन दृष्टिकोण से इन तीनों विचारधाराओं का विश्लेषण किया गया है।

राष्ट्रवाद : अवधारणा और विकास

राष्ट्रवाद एक आधुनिक राजनीतिक विचारधारा है, जो "राष्ट्र" को एक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक इकाई के रूप में स्थापित करती है। यह न केवल राजनीतिक संप्रभुता की मांग करता है, बल्कि सामूहिक पहचान, भावनात्मक एकता और साझा ऐतिहासिक स्मृति को भी महत्व देता है। "विद्वानों के अनुसार, राष्ट्रवाद का उद्भव मुख्यतः यूरोप में 18वीं–19वीं शताब्दी के दौरान हुआ, जहाँ यह सामंतवाद और औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध एक सशक्त वैचारिक औजार बना ।"[4.])गुप्ता, 2018, पृ .45) भारतीय संदर्भ में राष्ट्रवाद का स्वरूप इससे भिन्न रहा, क्योंकि यहाँ यह बहुलतावादी समाज में एकता स्थापित करने की चुनौती के साथ

विकसित हुआ। भारतीय राष्ट्रवाद का विकास औपनिवेशिक शासन के प्रतिरोध के रूप में हुआ, जिसने विभिन्न सामाजिक, धार्मिक और भाषाई समूहों को एक साझा उद्देश्य के अंतर्गत संगठित किया। बिपिन चंद्र के अनुसार, "भारतीय राष्ट्रवाद एक "समावेशी और जन-आधारित आंदोलन" था, जिसने स्वतंत्रता संग्राम को व्यापक सामाजिक आधार प्रदान किया।"[5.](चंद्र, 2016, पृ .87) यह राष्ट्रवाद केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें सामाजिक सुधार, आर्थिक स्वावलंबन और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के तत्व भी शामिल थे।

भारतीय राष्ट्रवाद की एक प्रमुख विशेषता इसकी बहुलतावादी और समन्वयवादी प्रकृति रही है। भारत जैसे विविधतापूर्ण समाज में राष्ट्रवाद का निर्माण "एकरूपता" के आधार पर नहीं, बल्कि "विविधता में एकता" के सिद्धांत पर हुआ। इस संदर्भ में महात्मा गांधी का दृष्टिकोण अत्यंत महत्वपूर्ण रहा, जिन्होंने राष्ट्रवाद को नैतिकता, अहिंसा और सर्वधर्म समभाव के साथ जोड़ा। गांधी के अनुसार, सच्चा राष्ट्रवाद वह है जो सभी समुदायों को समान रूप से सम्मान और स्थान देता है। समय के साथ राष्ट्रवाद के विभिन्न स्वरूप विकसित हुए, जिनमें उदारवादी, सांस्कृतिक और आक्रामक राष्ट्रवाद प्रमुख हैं। "उदारवादी राष्ट्रवाद लोकतांत्रिक मूल्यों और व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधारित होता है, जबकि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद राष्ट्र की पहचान को उसकी सांस्कृतिक विरासत से जोड़ता है। इसके विपरीत आक्रामक राष्ट्रवाद, अन्य राष्ट्रों या समुदायों के प्रति शत्रुता और बहिष्कार की प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है।"[6.](सिंह, 2019, पृ .78) भारतीय राजनीति में यह तीनों स्वरूप देखने को मिलते हैं।

समकालीन भारतीय राजनीति में राष्ट्रवाद का स्वरूप और अधिक जटिल हो गया है। यह केवल एक वैचारिक अवधारणा नहीं रह गया, बल्कि राजनीतिक रणनीति और जनसंचार का एक महत्वपूर्ण उपकरण बन गया है। चुनावी राजनीति में राष्ट्रवाद का उपयोग जनसमर्थन प्राप्त करने और वैधता स्थापित करने के लिए किया जाता है। इसके अतिरिक्त, वैश्वीकरण और तकनीकी विकास के युग में राष्ट्रवाद के सामने नई चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। एक ओर वैश्विक आर्थिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान राष्ट्र की पारंपरिक सीमाओं को कमजोर कर रहा है, वहीं दूसरी ओर स्थानीय पहचान और सांस्कृतिक अस्मिता को बचाने की प्रवृत्ति राष्ट्रवाद को पुनः सशक्त कर रही है। इस द्वंद्वात्मक स्थिति में राष्ट्रवाद एक गतिशील और परिवर्तनीय अवधारणा के रूप में उभरता है।

अंततः, यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रवाद का विकास एक रैखिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित एक जटिल प्रक्रिया है। भारतीय संदर्भ में राष्ट्रवाद की सफलता इसी में निहित है कि वह अपनी बहुलतावादी और समावेशी प्रकृति को बनाए रखे, अन्यथा यह अपने ही मूल उद्देश्यों से विचलित हो सकता है। इसलिए राष्ट्रवाद का समकालीन विश्लेषण करते समय उसके विभिन्न स्वरूपों और अंतर्विरोधों को समझना अत्यंत आवश्यक है।

समाजवाद : सिद्धांत और भारतीय संदर्भ

समाजवाद एक ऐसी राजनीतिक-आर्थिक विचारधारा है, जिसका मूल उद्देश्य सामाजिक और आर्थिक समानता की स्थापना करना है। यह उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व, संसाधनों के न्यायसंगत वितरण और वर्गहीन समाज की परिकल्पना पर आधारित है। “समाजवाद की वैचारिक जड़ें औद्योगिक क्रांति के बाद उत्पन्न असमानताओं के विरोध में विकसित हुईं, जहाँ पूँजीवादी व्यवस्था के कारण श्रमिक वर्ग का शोषण व्यापक रूप से सामने आया ।”[7])गुप्ता, 2018, पृ .67) इस संदर्भ में कार्ल मार्क्स और एंगेल्स के विचारों ने समाजवाद को सैद्धांतिक आधार प्रदान किया, जिसमें वर्ग-संघर्ष को सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख माध्यम माना गया । भारतीय संदर्भ में समाजवाद का विकास पश्चिमी देशों की तुलना में भिन्न परिस्थितियों में हुआ। यहाँ यह केवल आर्थिक असमानता के विरोध तक सीमित नहीं रहा, बल्कि सामाजिक विषमताओं—विशेषकर जाति, वर्ग और लिंग आधारित भेदभाव—को समाप्त करने के प्रयास के रूप में भी उभरा । स्वतंत्रता संग्राम के दौरान समाजवादी विचारधारा ने राष्ट्रवादी आंदोलन के भीतर एक महत्वपूर्ण धारा के रूप में स्थान प्राप्त किया, जिसमें जवाहरलाल नेहरू जैसे नेताओं ने समाजवादी नीतियों को राष्ट्रीय विकास के लिए आवश्यक माना । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय राज्य ने समाजवादी आदर्शों को अपनी नीतियों में समाहित करने का प्रयास किया। “भारतीय संविधान की प्रस्तावना में “समाजवादी” शब्द का समावेश इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था, जो राज्य की प्रतिबद्धता को सामाजिक और आर्थिक न्याय के प्रति दर्शाता है ।”[8])वर्मा, 2021, पृ .58) इसके अतिरिक्त, पंचवर्षीय योजनाओं, सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार और भूमि सुधार जैसी नीतियों के माध्यम से समाजवाद को व्यवहारिक रूप देने का प्रयास किया गया ।

हालाँकि, “भारतीय समाजवाद का स्वरूप शुद्ध मार्क्सवादी मॉडल से अलग रहा है। इसे अक्सर “लोकतांत्रिक समाजवाद” के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिसमें राजनीतिक लोकतंत्र और आर्थिक समानता के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया गया ।”[9])सिंह, 2019, पृ .102) इस मॉडल में राज्य की सक्रिय भूमिका तो स्वीकार की गई, लेकिन निजी क्षेत्र और बाज़ार तंत्र को पूर्णतः समाप्त नहीं किया गया। इस प्रकार भारतीय समाजवाद एक मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में विकसित हुआ, जिसमें पूँजीवाद और समाजवाद दोनों के तत्व मौजूद हैं। समकालीन भारतीय राजनीति में समाजवाद की प्रासंगिकता एक जटिल प्रश्न बन गई है। आर्थिक उदारीकरण के बाद से बाजारोन्मुख नीतियों ने समाजवादी आदर्शों को चुनौती दी है, जिससे राज्य की कल्याणकारी भूमिका में कमी आई है। इसके बावजूद, सामाजिक न्याय, आरक्षण नीति और कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से समाजवाद के तत्व अभी भी भारतीय राजनीति में सक्रिय हैं। समाजवाद और सांप्रदायिकता के बीच स्पष्ट वैचारिक अंतर्विरोध भी देखने को मिलता है।

भारतीय संदर्भ में समाजवाद को केवल एक आर्थिक नीति के रूप में नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक दर्शन के रूप में समझना आवश्यक है। इसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि यह बदलती वैश्विक और राष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को किस प्रकार अनुकूलित करता है। यदि समाजवाद अपने मूल सिद्धांत यथा - समानता, न्याय आदि को बनाए रखते हुए व्यावहारिक नीतियों में रूपांतरित हो सके, तो यह भारतीय लोकतंत्र को अधिक सुदृढ़ और समावेशी बना सकता है।

सांप्रदायिकता : स्वरूप और प्रभाव

सांप्रदायिकता एक ऐसी राजनीतिक-सामाजिक विचारधारा है, जो धर्म को सामाजिक पहचान और राजनीतिक संगठन का प्रमुख आधार बनाती है। यह केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं रहती, बल्कि विभिन्न समुदायों के बीच "हम" और "वे" की विभाजनकारी मानसिकता को जन्म देती है। इस प्रकार सांप्रदायिकता, धर्म को निजी आस्था के क्षेत्र से निकालकर सार्वजनिक और राजनीतिक क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा तथा संघर्ष का माध्यम बना देती है । "सांप्रदायिकता का मूल तत्व यह है कि यह किसी एक धार्मिक समुदाय के हितों को अन्य समुदायों के विरुद्ध खड़ा करती है ।"[10.]) गुप्ता, 2018, पृ .134) भारतीय संदर्भ में सांप्रदायिकता का विकास औपनिवेशिक काल में विशेष रूप से तीव्र हुआ। "ब्रिटिश शासन की "फूट डालो और राज करो" की नीति ने विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच अविश्वास और प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया । अलग निर्वाचन क्षेत्रों) separate electorates) की व्यवस्था ने इस विभाजन को संस्थागत रूप प्रदान किया, जिससे राजनीतिक प्रतिनिधित्व भी धार्मिक आधार पर निर्धारित होने लगा ।"[11.]) कुमार, 2020, पृ .198) इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ने सांप्रदायिकता को एक स्थायी राजनीतिक प्रवृत्ति के रूप में स्थापित कर दिया।

"सांप्रदायिकता का स्वरूप बहुआयामी है, जिसे विभिन्न स्तरों पर समझा जा सकता है। प्रारंभिक स्तर पर यह "सांस्कृतिक सांप्रदायिकता" के रूप में प्रकट होती है, जहाँ एक समुदाय अपनी सांस्कृतिक श्रेष्ठता को स्थापित करने का प्रयास करता है। इसके बाद "राजनीतिक सांप्रदायिकता" का चरण आता है, जिसमें धार्मिक पहचान के आधार पर राजनीतिक संगठन और लामबंदी होती है। अंततः यह "हिंसात्मक सांप्रदायिकता" में परिवर्तित हो सकती है, जहाँ सामाजिक तनाव और दंगे जैसी स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं ।"[12.])वर्मा, 2021, पृ .72) भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता का प्रभाव व्यापक और गहरा रहा है। यह न केवल सामाजिक सद्भाव को प्रभावित करती है, बल्कि लोकतांत्रिक संस्थाओं की कार्यप्रणाली पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालती है। चुनावी राजनीति में सांप्रदायिक मुद्दों का उपयोग मतदाताओं को ध्रुवीकृत करने के लिए किया जाता है, जिससे लोकतंत्र की मूल भावना—समानता और निष्पक्षता—कमजोर पड़ती है । इस प्रकार सांप्रदायिकता लोकतंत्र को "बहुमतवाद" की दिशा में मोड़ सकती है, जहाँ अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों की उपेक्षा होती है।

इसके अतिरिक्त, सांप्रदायिकता का सामाजिक प्रभाव भी अत्यंत गंभीर होता है। यह विभिन्न समुदायों के बीच अविश्वास, भय और असुरक्षा की भावना को जन्म देती है, जिससे सामाजिक ताना-बाना कमजोर होता है। सांप्रदायिक दंगे न केवल जान-माल की हानि करते हैं, बल्कि दीर्घकालिक सामाजिक विभाजन को भी गहरा करते हैं । इस प्रकार सांप्रदायिकता केवल एक राजनीतिक समस्या नहीं, बल्कि एक गहन सामाजिक संकट भी है। "सांप्रदायिकता और राष्ट्रवाद के बीच संबंध भी जटिल और अंतर्विरोधपूर्ण है। जहाँ समावेशी राष्ट्रवाद विभिन्न समुदायों को एकजुट करने का प्रयास करता है, वहीं सांप्रदायिकता इस एकता को खंडित करती है। जब राष्ट्रवाद का स्वरूप संकीर्ण होकर किसी एक धार्मिक पहचान से जुड़ जाता है, तब यह सांप्रदायिकता में परिवर्तित हो सकता है ।"[13.])सिंह, 2019, पृ .119) इस स्थिति में राष्ट्रवाद अपनी मूल समावेशी भावना खो देता है और सामाजिक विभाजन को बढ़ावा देता है। सांप्रदायिकता का प्रभाव केवल वर्तमान तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह भविष्य की सामाजिक और राजनीतिक दिशा को भी प्रभावित करता है। यदि इसे नियंत्रित और संतुलित नहीं किया गया, तो यह लोकतांत्रिक मूल्यों—जैसे धर्मनिरपेक्षता, समानता ,न्याय आदि—को गंभीर रूप से क्षति पहुँचा सकती है।

राष्ट्रवाद और समाजवाद का अंतर्संबंध

राष्ट्रवाद और समाजवाद, दोनों ही आधुनिक राजनीतिक विचारधाराएँ हैं, जिनका उद्देश्य समाज और राज्य की संरचना को अधिक न्यायपूर्ण और संगठित बनाना है। यद्यपि इनकी वैचारिक उत्पत्ति और प्राथमिकताएँ भिन्न हैं, फिर भी इनके बीच गहरा अंतर्संबंध पाया जाता है। राष्ट्रवाद जहाँ एक साझा राष्ट्रीय पहचान और एकता पर बल देता है, वहीं समाजवाद सामाजिक-आर्थिक समानता और न्याय को केंद्र में रखता है। इस प्रकार, दोनों विचारधाराएँ मिलकर एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना करती हैं, जो न केवल राजनीतिक रूप से स्वतंत्र हो, बल्कि सामाजिक रूप से समावेशी और आर्थिक रूप से न्यायपूर्ण भी हो । भारतीय संदर्भ में राष्ट्रवाद और समाजवाद का यह अंतर्संबंध विशेष रूप से स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। राष्ट्रवादी संघर्ष केवल औपनिवेशिक सत्ता से मुक्ति तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें सामाजिक और आर्थिक पुनर्निर्माण की आकांक्षा भी निहित थी। "जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रवाद को समाजवादी दृष्टिकोण के साथ जोड़ते हुए यह तर्क दिया कि राजनीतिक स्वतंत्रता तभी सार्थक होगी, जब उसे सामाजिक और आर्थिक न्याय के साथ जोड़ा जाए ।"[14.])चंद्र, 2016, पृ .228) इस प्रकार भारतीय राष्ट्रवाद का एक महत्वपूर्ण आयाम समाजवादी आदर्शों से प्रभावित रहा। राष्ट्रवाद और समाजवाद के बीच एक महत्वपूर्ण समानता यह है कि दोनों ही सामूहिकता को महत्व देते हैं। राष्ट्रवाद राष्ट्रीय एकता के माध्यम से सामूहिक पहचान को सुदृढ़ करता है, जबकि समाजवाद वर्गीय भेदभाव को समाप्त कर सामूहिक कल्याण की स्थापना करता है। इस दृष्टि से, समाजवाद राष्ट्रवाद को एक नैतिक और सामाजिक आधार प्रदान करता है, जिससे राष्ट्रवाद केवल राजनीतिक नारा न रहकर सामाजिक न्याय की दिशा में एक सशक्त साधन बन सकता है ।

हालाँकि, इन दोनों विचारधाराओं के बीच अंतर्विरोध भी उभरते हैं, विशेषकर तब जब राष्ट्रवाद का स्वरूप संकीर्ण या बहिष्कारी हो जाता है। समाजवाद, जो समानता और समावेशन पर आधारित है, किसी भी प्रकार के भेदभाव का विरोध करता है। इसके विपरीत, यदि राष्ट्रवाद किसी विशेष सांस्कृतिक या धार्मिक पहचान को प्राथमिकता देता है, तो यह समाजवाद के मूल सिद्धांतों के विरुद्ध खड़ा हो जाता है । इस प्रकार, राष्ट्रवाद और समाजवाद का संबंध संतुलन और संघर्ष—दोनों के तत्वों से युक्त है।

समकालीन भारतीय राजनीति में यह अंतर्संबंध और अधिक जटिल हो गया है। "एक ओर राष्ट्रवाद का प्रयोग राजनीतिक वैधता और जनसमर्थन प्राप्त करने के लिए किया जाता है, वहीं दूसरी ओर समाजवादी नीतियों को कल्याणकारी योजनाओं और सामाजिक न्याय के कार्यक्रमों के माध्यम से लागू किया जाता है ।"[15.])यादव, 2022, पृ .173) इस प्रक्रिया में कई बार दोनों विचारधाराओं का उपयोग व्यावहारिक राजनीति के तहत किया जाता है, जिससे इनके मूल सिद्धांतों में विचलन उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त, वैश्वीकरण और उदारीकरण के दौर में राष्ट्रवाद और समाजवाद के संबंध में नए आयाम जुड़े हैं। आर्थिक उदारीकरण ने समाजवादी नीतियों की सीमाओं को उजागर किया है, जबकि राष्ट्रवाद ने वैश्विक प्रभावों के बीच राष्ट्रीय हितों की रक्षा का माध्यम प्रदान किया है । इस संदर्भ में दोनों विचारधाराओं के बीच संतुलन स्थापित करना और भी चुनौतीपूर्ण हो गया है।

राष्ट्रवाद और समाजवाद का अंतर्संबंध एक गतिशील और बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसमें सहयोग और संघर्ष दोनों के तत्व मौजूद हैं। भारतीय संदर्भ में इन दोनों विचारधाराओं का समन्वय तभी संभव है, जब राष्ट्रवाद अपने समावेशी स्वरूप को बनाए रखे और समाजवाद अपने व्यावहारिक क्रियान्वयन को सुदृढ़ करे। इस संतुलन के माध्यम से ही एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना साकार हो सकती है, जो न केवल राजनीतिक रूप से सशक्त हो, बल्कि सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से भी न्यायपूर्ण और समावेशी हो।

राष्ट्रवाद और सांप्रदायिकता का अंतर्विरोध

राष्ट्रवाद और सांप्रदायिकता, दोनों ही पहचान-आधारित विचारधाराएँ हैं, किंतु इनके स्वरूप और उद्देश्यों में मूलभूत अंतर है। राष्ट्रवाद का आदर्श स्वरूप एक ऐसी समावेशी राजनीतिक समुदाय की रचना करना है, जिसमें विविध धर्मों, भाषाओं और संस्कृतियों के लोग एक साझा राष्ट्रीय पहचान के अंतर्गत एकजुट हों। इसके विपरीत, सांप्रदायिकता किसी एक धार्मिक समुदाय की पहचान को प्राथमिकता देते हुए अन्य समुदायों के साथ विभाजन और प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देती है । इस प्रकार, जहाँ राष्ट्रवाद एकता का वाहक है, वहीं सांप्रदायिकता विखंडन की प्रवृत्ति को जन्म देती है । भारतीय संदर्भ में यह अंतर्विरोध विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यहाँ का राष्ट्रवाद मूलतः बहुलतावादी और समावेशी रहा है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान विकसित राष्ट्रवाद ने विभिन्न धार्मिक समुदायों को एक साझा राजनीतिक उद्देश्य—औपनिवेशिक शासन से मुक्ति—के लिए संगठित किया। "महात्मा

गांधी ने राष्ट्रवाद को "सर्वधर्म समभाव" और अहिंसा के सिद्धांतों पर आधारित करते हुए यह स्पष्ट किया कि सच्चा राष्ट्रवाद किसी भी प्रकार की धार्मिक असहिष्णुता के साथ सह-अस्तित्व नहीं रख सकता ।"[16])चंद्र, 2016, पृ. 254) इस दृष्टि से भारतीय राष्ट्रवाद की मूल भावना सांप्रदायिकता के पूर्णतः विपरीत है। फिर भी, औपनिवेशिक काल में सांप्रदायिकता के उदय ने राष्ट्रवाद के समावेशी स्वरूप को चुनौती दी। ब्रिटिश शासन की नीतियों ने धार्मिक आधार पर राजनीतिक विभाजन को प्रोत्साहित किया, जिससे राष्ट्रवादी आंदोलन के भीतर भी सांप्रदायिक तनाव उत्पन्न हुए । इसका चरम रूप भारत के विभाजन के समय देखने को मिला, जब सांप्रदायिकता ने राष्ट्रवाद को ही विभाजित कर दिया । यह घटना इस अंतर्विरोध का ऐतिहासिक उदाहरण प्रस्तुत करती है कि किस प्रकार सांप्रदायिकता राष्ट्रवाद की एकता को कमजोर कर सकती है।

समकालीन भारतीय राजनीति में जहां एक ओर राष्ट्रवाद को राष्ट्रीय एकता और विकास के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, वहीं दूसरी ओर कई बार इसे धार्मिक पहचान के साथ जोड़कर सांप्रदायिक ध्रुवीकरण का माध्यम बनाया जाता है । राष्ट्रवाद, यदि अपने उदार और लोकतांत्रिक स्वरूप में बना रहे, तो यह विभिन्न समुदायों के बीच एकता और सहयोग को बढ़ावा देता है। इसके विपरीत, सांप्रदायिकता सामाजिक विभाजन और असमानता को बढ़ावा देती है, जिससे लोकतांत्रिक मूल्यों—जैसे समानता, धर्मनिरपेक्षता और न्याय—को क्षति पहुँचती है । इसके अतिरिक्त, राष्ट्रवाद का सांप्रदायिकता में रूपांतरण एक गंभीर वैचारिक समस्या है। "जब राष्ट्र की परिभाषा को किसी एक धर्म या संस्कृति तक सीमित कर दिया जाता है, तब राष्ट्रवाद अपनी समावेशी प्रकृति खो देता है और सांप्रदायिकता का रूप ले लेता है। यह स्थिति न केवल सामाजिक सद्भाव को प्रभावित करती है, बल्कि राज्य की वैधता और लोकतांत्रिक संरचना को भी चुनौती देती है ।"[17])शर्मा, 2018, पृ .149) राष्ट्रवाद और सांप्रदायिकता के बीच अंतर्विरोध भारतीय राजनीति की एक केंद्रीय समस्या है। इस अंतर्विरोध का समाधान तभी संभव है, जब राष्ट्रवाद को उसकी मूल बहुलतावादी और समावेशी भावना के साथ पुनर्स्थापित किया जाए। इसके लिए आवश्यक है कि राजनीतिक और सामाजिक स्तर पर धर्मनिरपेक्षता, सहिष्णुता और संवैधानिक मूल्यों को सुदृढ़ किया जाए, ताकि राष्ट्रवाद एकता का माध्यम बने, न कि विभाजन का।

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय राजनीति में राष्ट्रवाद, समाजवाद और सांप्रदायिकता के बीच गहरे और जटिल अंतर्विरोध मौजूद हैं। राष्ट्रवाद, जो मूलतः एकता और राष्ट्रीय पहचान को सुदृढ़ करने का माध्यम था, आज विभिन्न रूपों में प्रकट हो रहा है। समाजवाद, जो समानता और न्याय का प्रतीक है, इन अंतर्विरोधों के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है, लेकिन व्यावहारिक राजनीति में इसकी प्रभावशीलता सीमित होती जा रही है। सांप्रदायिकता, इन दोनों के विपरीत, समाज में विभाजन और संघर्ष को बढ़ावा देती है, जिससे लोकतांत्रिक मूल्यों को चुनौती मिलती है। यह स्पष्ट है कि जब राष्ट्रवाद सांप्रदायिकता के

साथ जुड़ता है, तब यह अपने मूल समावेशी स्वरूप से विचलित हो जाता है और समाजवाद के आदर्शों को कमजोर करता है। इसलिए आवश्यकता है कि राष्ट्रवाद को पुनः परिभाषित किया जाए, ताकि वह समावेशी, बहुलतावादी और लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरूप हो। साथ ही, समाजवादी नीतियों को प्रभावी ढंग से लागू करने की जरूरत है, ताकि सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को कम किया जा सके। अंततः, इन तीनों विचारधाराओं के बीच संतुलन स्थापित करना ही भारतीय लोकतंत्र की स्थिरता और समृद्धि के लिए आवश्यक है। यह संतुलन केवल नीतिगत स्तर पर ही नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी स्थापित किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- चंद्र, बिपिन) .2016). *भारत का स्वतंत्रता संग्राम.* नई दिल्ली :पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया।
- दत्त, के) .2017). *भारतीय अर्थव्यवस्था और समाजवाद.* पटना :ज्ञानदीप प्रकाशन।
- गुप्ता, एन) .2018). *राजनीतिक विचारधाराएँ.* नई दिल्ली :साहित्य भवन प्रकाशन।
- गुप्ता, एन) .2018). *राजनीतिक विचारधाराएँ.* नई दिल्ली :साहित्य भवन प्रकाशन।
- चंद्र, बिपिन) .2016). *भारत का स्वतंत्रता संग्राम.* नई दिल्ली :पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया।
- सिंह, ए) .2019). *राष्ट्रवाद का पुनर्पाठ.* लखनऊ :भारतीय प्रकाशन।
- गुप्ता, एन) .2018). *राजनीतिक विचारधाराएँ.* नई दिल्ली :साहित्य भवन प्रकाशन।
- वर्मा, एम) .2021). *आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता.* जयपुर :रावत प्रकाशन।
- सिंह, ए) .2019). *राष्ट्रवाद का पुनर्पाठ.* लखनऊ :भारतीय प्रकाशन।
- गुप्ता, एन) .2018). *राजनीतिक विचारधाराएँ.* नई दिल्ली :साहित्य भवन प्रकाशन।
- कुमार, वी) .2020). *भारतीय संविधान और लोकतंत्र.* नई दिल्ली :ओरिएंट ब्लैकस्वान।
- वर्मा, एम) .2021). *आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता.* जयपुर :रावत प्रकाशन।
- सिंह, ए) .2019). *राष्ट्रवाद का पुनर्पाठ.* लखनऊ :भारतीय प्रकाशन।
- चंद्र, बिपिन) .2016). *भारत का स्वतंत्रता संग्राम.* नई दिल्ली :पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया।
- यादव, पी) .2022). *समकालीन भारतीय राजनीति.* वाराणसी :विश्वविद्यालय प्रकाशन।
- चंद्र, बिपिन) .2016). *भारत का स्वतंत्रता संग्राम.* नई दिल्ली :पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया।
- शर्मा, आर) .2018). *भारतीय राजनीति और समाजवाद.* नई दिल्ली :प्रकाशन संस्थान।